IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

# वैदिक संस्कृति में धर्म का स्वरूपः एक अध्ययन

डॉ. रणधीर कौशिक, (सह आचार्य)
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर। (पंजाब)

भारतीय मनीषियों ने मनुष्य के जीवन को आध्यात्मिक, भौतिक एवं नैतिक दृष्टि से उन्नत करने के लिये अनेकों सिद्वान्तों की व्याख्या की है। जीवन में आध्यात्मिक एवं भौतिक सुख दोनों का अहम् स्थान है। इन दोनों का समन्वित रूप ही जीवन को समुन्नत करता है। पुरूषार्थ मनुष्य वह आधार है जिसके माध्यम से वह अपना जीवन जीता है। पुरूषार्थ से व्यक्ति के जीवन का विकास तो होता ही है साथ–साथ समाज का विकास भी होता है। भारतीय संस्कृति में पुरूषार्थ चतुष्टय में सबसे अधिक महत्व धर्म और मोक्ष को ही दिया गया है। परन्तु सर्व प्रथम भारतीय संस्कृति का मूल आधार धर्म को ही माना गया है। व्यक्ति धर्म का अनुसरण करता हुआ ही अपने मुख्य लक्ष्य तक पहुँचता है।

भारतीय परम्परा में धर्म का महत्व विश्व विख्यात है। सामान्य रूप से व्यक्ति को यह सिद्वान्त मात्र ही प्रतीत होता है परन्तु वास्तव में यह हमारे सर्वांगिंण विकास का आधार है। इसके बिना हम व्यक्तित्व विकास की कल्पना भी नहीं कर सकते।

यहां पर सर्वप्रथम प्रश्न उठता है कि यह धर्म क्या है? यहां भारतीय परम्परा के अनुसार 'धर्म' शब्द की व्युत्पति धृ धातु से हुई है जिसका सामान्य अर्थ है धारण करना।1 प्राचीन भारतीय धर्म ग्रन्थों में धर्म के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन हुआ है।

सर्व प्रथम ध्रियते लोक अनेन इति धर्मः[2] अर्थात् जिसे लोक या संसार को धारण किया जाये वह धर्म है। दूसरे अर्थो में धरति धारयति का लोकः इति धर्मः[3] अर्थात् जो लोक को धारण करता है, वह धर्म है। अन्य अर्थ में हम कह सकते है – ध्रियते यः य धर्मः[4] अर्थात् जो दूसरों से धारण किया जाये वह धर्म है। अमर कोश के अनुसार भी धर्म शब्द के अनेक अर्थ है। जैसे सुकृत, पुण्य, न्याय, स्वभाव, आचार आदि5 आचार्य यास्क ने धर्म शब्द का अर्थ नियम बताया है।6 अर्थात् जिस नियम ने इस लोक या संसार का धारण कर रखा है वह धर्म है।

वैदिक संहिताओं में 'ऋृत' को ही धर्म माना गया है वही सत्य है, इसी को नैतिक व्यवस्था का पर्याय बताया गया है, तभी तो हम कहते है कि 'वेदोऽखिलो धर्म मूलम अर्थात् वेद ही धर्म के प्रतिपादक है, इन्ही से सुख की प्राप्ति होती है जैसे कि कहा भी गया है कि धर्मः सुखस्यमूलम अर्थात् धर्म ही सुख का आधार है। भगवान ने वेदों के आधार पर ही सृष्टि की रचना की है तथा भारत की संस्कृति वेदमूलक है, वेद ही धर्म का मूल है। वेद मूलक स्मृति, सदाचार ही धर्म में प्रमाण है। महाभारत के अनुशासन पर्व में आचार अथवा सदाचार को धम का लक्षण माना गया है तथा आचार से ही धर्म का फलीभूत होना बताया है। कहां भी है–

आचार लक्षणों धर्मः सत्तश्चारित्रलक्षणः।7

साधूनां च यथा वृतमेत्दाचारलक्षणम्।।

धर्म के अनुपालन में ही समस्त मानवता का कल्याण निहित है। नैतिक एवं उत्तम आचरण ही धर्म के आधार स्तम्भ है। धर्म एक मर्यादा है जो अर्थ एवं काम को सीमित परिधि में निबद्ध कर व्यक्ति को पथभ्रष्ट होने से रोकती है एवं समय–2 पर व्यक्ति के वास्तविक कर्त्तव्य का बोध कराती है। प्राचीन काल में सम्पूर्ण सामाजिक एवं नैतिक अवधारण्णा से धर्म में मानवीय कल्याण की भावना निहित थी। महाभारत के शान्ति पर्व में कहा गया है जिन सिद्वान्तों क अनुसार व्यक्ति अपना दैनिक जीवन व्यतीत करता है जिसके द्वारा सामाजिक बन्धनों की स्थापना होती है वही धर्म है। यही जीवन का सत्य है एवं हमारी प्रकृति को निर्धारित करने वाली शक्ति है। वेद व्यास जी और भी लिखते है– दुष्ट मनुष्य के दर्शन से, स्पर्श से, उनके साथ वातालाप करने से तथा एक आसन पर बैठने से धार्मिक आचार नष्ट हो जाते है तथा मनुष्य किसी कार्य में सफल नहीं होता है8 और भी कहते है – धर्म एवं हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः। तस्माद्वर्म न त्यजामि मा नो धर्मो हतोऽवधीत।9 अर्थात् धर्म ही आहत् होने पर मनुष्य को मारता है और वही पालन किया जाता हुआ रक्षा करता है अतः हमें धर्म को नहीं त्यागना चाहिये नहीं तो धर्म ही हमारा वध कर डालेगा।

आगे भी कहते हैं कि धारण करने से लोग इसको धर्म कहते है धर्म प्रजा को धारण करता है, जो धारणा के साथ रहे वही धर्म है।[10] श्रीमद्भगवद् में भी स्पष्ट कहा है– वेदप्रर्णिाहतो धर्मो हयधर्मस्तद्विपर्ययः11 अर्थात् वेद में कहा हुआ ही धर्म है उसके विपरीत अधर्म है। भगवान ने ही धर्म रूपी नियमको बनाया है। वे स्वयं ही उसी पर नियंत्रण रखते है या रखवाते है, यहां तक कि वे धर्म की हानि को देखकर स्वयं अवतार धारण करते हैं जैसा कि उन्होनें गीता में डके की चोट पर कहा है कि हे अर्जुन जब–जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्वि होती है तब–तब मैं इस सृष्टि का सृजन करने के लिये अवतार धारण करता हूँ। साधुओं, सन्त, महात्माओं की रक्षा तथा दुष्टों का विनाश करने के लिये तथा धर्म को पुनः स्थापना हेतु

मैं इन तीनों कामों के लिये प्रत्येक युग में प्रकट होता हूँ।[12] इसलिये हम कह सकते है कि धर्म की रक्षा करने वाले, धर्म को बनाने वाले और समस्त धर्मो के आधार स्वयं भगवान ही है। रामायण के अयोध्या काण्ड में भी महर्षि बाल्मीकि ने धर्म को सत्य मान कर उसको ईश्वर स्वरूप माना है, उनके अनुसार जगत् में सत्य ही ईश्वर है, सदा सत्य के आधार पर ही धर्म की स्थिति रहती है, सत्य ही सबकी जड़ है, सत्य से बढ़कर कोई उत्तम गति नहीं है। दान, यज्ञ, होम, तपस्या और वेद इन सब का आश्रय धर्म है, इसलिये सबको सत्य स्वरूप धर्म का आचरण करना चाहिये।[13] जैसा कि कहा भी है–

सत्यमेवेश्वरो लोकेसत्ये धर्मः सदाऽऽश्रितः।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्।।
दतंयिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तंपासि च।
वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात्सत्यपरो भवेत।।

रामायण में तो श्री राम ही साक्षात् धर्म के विग्रह स्वरूप हैं।[14] श्रीराम के राज्य में प्रायः सभी मनुष्य परस्पर प्रेम करने वाले तथा नोति, धर्म, सदाचार और ईष्वर की भक्ति में तत्पर रहकर अपने–अपने धर्म का पालन करने वाले थे। वैशेषिक दर्शन में भी सदाचार को ही धर्म का स्वरूप माना है, वह लोक एवं परलोक में कल्याण करने वाला जो अनादि काल से ही चला आ रहा है, उसी से मनुष्य का कल्याण होता है। उसी से लौकिक उन्नति तथा पार लौकिक कल्याण की प्राप्ति होती है।[15]

याज्ञवल्क्य ऋृषि धर्म के विषय में बताते हुए कहत हैं कि मनुष्य के जो प्रमुख कर्तव्य हैं वही उसके धर्म हैं। इनके अनुसार –

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
दानं दया दमः क्षान्ति सर्वेषां धर्म साधनम्।।[16]

अर्थात् किसी भी प्राणी को पीड़ा न पहुँचाना, सच बोलना, बिना दिया हुआ कुछ न लेना अर्थात् चोरो न करना, शरीर और मन की शुद्धि इन्द्रियों को वश में लाना, यथाशक्ति दान देना, विपत्ति में पड़े हुये की रक्षा करना, अपने मन को वश में रखना, अपना उपकार हो जाने पर भी क्रोध न प्रकट करना, ये सब धर्म के लक्षण हैं, अन्य स्मृतिकारों ने भी धर्म के इन्हीं लक्षणों को स्वीकार किया है।

मनु महाराज ने धर्म की विस्तृत व्याख्या की है उन्होने धर्म का मूल वेदों को माना है क्यों भारतीय संस्कृति वेदमूलक है। कहा भी है–

वेदो ऽखिलो धर्म मूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्रैव साधुनामात्मनस्तुष्टिरेव च।।17

अर्थात् सम्पूर्ण धर्म का मूल वेद है, वेदों को जानने वालों की स्मृति तथा शील अर्थात् ब्रह्मण्यता, देव–पितृभक्ति, सौम्यता, अपरोपतापिता, अनसूयता, मृदुता, अपारूष्य, मित्रता, प्रियवादिता, कृतज्ञता, शरण्यता, कारूण्य और प्रशक्ति ये तेरह प्रकार का शील तथा वेदों का आचरण तथा वेद के वैकल्पिक विषयों में सज्जन लोगों की संतुष्टि ही धर्म है। सामान्य रूप से मनुस्मृति में धर्म के चार स्त्रोत बताये गये हैं – वेद, स्मृति, सदाचार एवं आत्म संतुष्टि। व्यक्ति क जीवन को सम्पूर्ण बनाने में धर्म की भूमिका अग्रणी होती है, धर्म व्यक्ति के कर्तव्यों को निर्धारित करता है। यहां धर्म के निर्वहण में नैतिकता को महत्व पूर्ण स्थान दिया गया है।[18] धर्म युग युगान्तर से चली आ रही परम्परा का पालन पोषण करता है। प्राचीन कालीन व्यवस्थाकारों ने ऐसे विधानों या नियमों का सृजन किया है जो सभी धर्म द्वारा ही संचालित होते थे तथा उनमें मुख्य रूप से मानवीय कल्याण की भावना निहित होती थी। इसी कारण से ही मनुष्य अपने अन्दर पवित्र भावना रखकर सद्गुणों का विकास करके धर्म के स्वरूप को बड़ी ही आसानी के साथ धारण कर सकता था। महाराज मनु ने आगे और भी सुन्दर वर्णन करते हुए कहा है कि धर्म की उत्पति सत्य से होती है, दया और दान से वह बढ़ता है, क्षमा में वह निवास करता है तथा कोध से धर्म का नाश हो जाता है।[19] मनु जी आगे भी कहते है–

श्रुति स्मृत्युदितं धर्मनुतिष्ठन्हिमानवः।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्।।[20]

अर्थात् श्रुति एवं स्मृति में कहे हुए धर्म का पालन करता हुआ मनुष्य इस लोक में यश को पाता है तथा मरकर परलोक में उत्तम सुख या मोक्ष को प्राप्त होता है। मनु जी धर्म को मनुष्य का सबस उत्तम मित्र माना है, उनके अनुसार एक धर्म ही ऐसा मित्र है जो मरने पर भी जीव के साथ जाता है और सभी तो शरीर के नाश के साथ ही छोड़कर चले जाते है। साथ ही शास्त्र भी यही कहता है कि मनुष्य यदि अपने धर्म का पालन करता हुआ मरता है, तो वह श्रेष्ठ है, पर धर्म तो सदैव भय को देने वाला है। सभी प्राणियों का वही परम धर्म है जिसन भगवान में निष्काम, अटल और अचल भक्ति हो तथा जिसके करने से व्यक्ति की अन्तर्रात्मा प्रसन्न हो, तभी तो कहा है जहां धर्म होता है, वहीं विजय होती है और भी कहा है कि –

धर्मेण हन्यते व्याधिर्धमेण हन्यतेग्रहः
धर्मेण हन्यते शत्रुर्यतो धर्मस्ततो जयः।।[21]

अर्थात् धर्म के धारण करने से सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते है, धर्म से ग्रहों को पीड़ा मिट जाती है, धर्म ही शत्रु का नाश करता है, जहां धर्म होता है, वही जय होनो हैं। मनु महाराज तो माता पिता एवं गुरू की एवं अतिथि की सेवा करने वाले को ही धर्मानुग्राही मानते हैं, वे पिता को गार्हपत्य अग्नि माता को दाक्षिण्य अग्नि एवं गुरू को आहवानीय अग्नि मानकर इनको सर्वश्रेष्ठ

मानते हुए कहते है कि व ही तीन लोक है, वे ही तीनों आश्रम है, वे ही तीन अग्नि हैं, जिसने इन तीनों का आदर किया है, उन्होनें ही सब धर्मों का आदर किया है तथा जिसने इनका आदर नहीं किया उसके सारे धर्म नष्ट हो जाते है। इन तीनों की सेवा से ही व्यक्ति के सभी कर्तव्य कर्म पूर्ण हो जाते है। यही साक्षात् परम धर्म है। इसके अतिरिक्त अन्य सब धर्म गौण (उपधर्म) कहे जाते है।[22] अन्त में मनु महाराज कहते ह धर्म के अन्तगत सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय निग्रह, क्षमा, श्रद्धा, मीठी वाणी, शील, अतिथि सेवा, माता पिता की सेवा, गुरू की सेवा, बड़ों का आदर सत्कार, सत्य वदं, धर्म चर इस प्रकार ये धर्म के प्रमुख कर्तव्य या लक्षण हैं, जो इनका पालन करता है धर्म उसकी रक्षा करता है तथा जो इनका पालन नहीं करता धर्म उसका हनन कर देता है। कहा भी है – धर्म एवं हतोहन्ति धर्मो रक्षतिः।

आज के आधुनिक चकाचौंध में यदि सबसे ज्यादा हानि हुई है तो वह धर्म की हानि हुई है, आज धर्म भी राजनीति का एक साधन हो गया है, राजनीतिज्ञों ने धर्म की परिभाषा ही बदल दो है, उन्होनें मनुष्य को मनुष्य से धर्म के नाम पर लड़ाकर अपना ही स्वार्थ सिद्ध किया है उन्होनें सम्प्रदायों को धर्म में बदल दिया है। उन्होनें समाज को हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध आदि पता नहीं कितने धर्म एवं सम्प्रदायों में बांट दिया है। आज धर्म के नाम पर जितनी सभायें, संगठन या आन्दोनल होते है वे अपना राजनैतिक अधिकार क्षेत्र ही विस्तृत करत हैं। आज धर्म भी दूसरे साधनों की तरह अर्थ (धन कमाने) का साधन बन गया है। धर्म परिवर्तन कराया जाता है, वह भी इस अभिलाषा के साथ कि हमारे धर्म की जनसंख्या अधिक हो तथा इससे अधिकाधिक आर्थिक लाभ लिया जा सके। आज सम्पूर्ण विश्व अधर्मियों के हाथों की कठपुतलीयां बना हुआ है, चारो और राजनीतिज्ञ धर्म के ठेकेदारों से मिलकर धर्म के नाम पर दंगा फसाद करवा रहे है। धर्म को अन्तमुखी की अपेक्षा बाहय दिखाने का साधन बना दिया है। आज प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म को श्रेष्ठ बता रहा है तथा दूसरे के धर्म को नीचा दिखाने का प्रयत्न करते है। आज कुछ दुष्ट प्रवृति के लोग बड़े गर्व से धर्म से मानव, जाति को मुक्त कराने की बात करत है तथा कुछ मूर्ख प्राणी यह कहकर प्रसन्न होते है कि मैं धर्म रूपी रोग से मुक्त हो चुका हूँ, परन्तु इसका परिणाम क्या होगा वे मूर्ख नहीं सोचते क्योंकि अग्नि यदि अपने धर्म का त्याग करेगी तो वह भस्म बन जायेगी यदि मनुष्य अपने धर्म का त्याग करता है तो वह पशु बन जाता है जैसा कि भर्तृहरि नीतिशतक में कहते है–

येषां न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्यलोके भूविभारभूताः मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति।।[24]

अर्थात् जिसके पास न विद्या है, न तप है, न दान देता है, न ही स्वभाव से अच्छा है, न गुण है तथा जो न ही अपने धर्म का पालन करता है, ऐसे मनुष्य इस लोक में मनुष्य के रूप में पशुओं जैसा आचरण करते है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि सम्पूर्ण शास्त्रों में कहीं भी धर्म को हिन्दू, मुस्लिम, जैन, बौद्व, सिख, ईसाई के नाम तक का उल्लेख नहीं है फिर आज हम धर्म के नाम पर क्यों झगडते है, क्यो एक दूसरे के खून के प्यासे है, कुछ दुष्ट लोगों के बहकावे में आकर क्यों हम अपनी सभ्यता एवं संस्कृति का अपमान कर रहे है, आज राजनैतिक एवं समाज के ठेकेदारों ने हमेारे सामाजिक ताने बाने को नष्ट भ्रष्ट कर दिया है, आज आवश्यकता है हमें जागने की समाज को प्राचीन संस्कृति से अवगत कराने की। क्योंकि हमारे समाज में धर्म वो नहीं है जो आज हम मान बैठे है बल्कि धर्म वो है जो हमारा राष्ट एवं समाज के प्रति कर्तव्य है, सबसे बड़ा धर्म है, मानवता का, सबसे बड़ा धर्म है राष्ट्र धर्म एवं मानवीय धर्म हमं उसी की रक्षा करनी है।

## सन्दर्भ ग्रंथ सूचीः–


1. अमरकोश – पृ.
2. कल्याण – भारतीय संस्कृति के पृ. 369
3. वहीं
4. निबन्ध श्रीराम हिन्दू संस्कृति के मूर्तिमान स्वरूप – पृ. 116 (हिन्दू संस्कृति अंक)
5. अमरकोश – पृ.
6. यास्ककृत निरूस्त – पृ
7. मनुस्मृति– 2/6
8. असतां दर्शनात् स्पशीत् सŒजल्पाच्च सहासनात्।
   धर्माचाराः प्रहीयन्ते सिद्धयत्ति च न मानवाः। महाभारत वनपर्व 12/8
9. वही 3/3/128
10. धारणाद्वर्ममित्याहुधर्मो धारयते प्रजाः। यत् स्याद्वारणा संयुक्त सः धर्म इति निश्चयः। महाभारत, कर्णपर्व 69/58
11. श्रीमद्भागवत – 6/1/44
12. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिभवति भारतः।
    अभ्युथानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्।।
    परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दृष्कृताम
    धर्मसंस्थापनार्थाय संमभवामि युगे–युगे। श्रीमद्भगवदगीता 4/7–8

13. बाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड – 109/13–14

14. वहीं

15. यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्विः सः धर्म।। वेशेषिक दर्शन 1/2

16. याज्ञवल्स्य स्मृति–

17. मनुस्मृति– 2/6

18. वेद स्मृति सदाचार स्वस्य च प्रियात्मनः।
ऐतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।। मनुस्मृति 2/12

19. सत्याज्जायते, दयया दानेन च वर्धते, क्षमायां तिष्ठति,
क्रोधान्नश्यति। मनुस्मृति वहीं

20. वही. 2/9

21. कल्याणः भारतीय संस्कृतिअंक पृ. 371

22. वही पृ. 372

23. पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताग्नि दक्षिणः स्मृतः।
गुरूराह्वानोयस्तु साग्नित्रेता गरीयसीः।।
त ऐव ही त्रयोलोकास्त एव त्रय आश्रमाः।
त एव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोऽग्नयः।
सर्वेतस्यधता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः कियाः।।
त्रिष्वेतेष्वितिकृत्यं हि पुरूषस्य समाप्यते।
एषः धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते।। मनुस्मृति 2/230–31, 234–37

24. नीतिशतक श्लोक–15